बचपन और साहित्य

प्रभात

मेरे बचपन के वर्ष गांव में बीते हैं। गांव में बच्चे के जन्म के बाद छठे दिन की रात जगाने की परंपरा है। उस रात स्त्रियां बच्चे के जन्म की खुशी में गीत गाती हैं। नवजात के कानों में यह पहला संगीत होता है। शिशु को पालने में झुलाते हुए, गोद में खिलाते हुए और सुलाते हुए, गुनगुनाने और लोरी गाने की बड़ी समृद्ध परंपरा हमारे देश में मिलती है।

सुत रह सुत रह बउआ रे
बारी में बोले छौ कौआ रे
आमक गाछी बुलबुल बोले
चौर बोले बाघ धरूआ रे
सुत रह सुत रह बउआ रे[1]

अब सुनने वाले शिशु को तो पता नहीं है कि उसके लिए गाई गई लोरी में उसके आसपास की प्रकृति का बड़ा सुंदर वर्णन किया गया है कि 'बाड़ी में कौआ बोल रहा है, आम की बगिया में कोयल बोल रही है, उधर धारीदार बाघ भी बोल रहा है, तुम सोते रहो, सोते रहो।' लोक कलाविद् कोमल कोठारी कहते हैं कि लोरी के शब्द शिशु के लिए नहीं है, बड़ों के लिए हैं। ठीक कहते हैं। कवि नरेश सक्सेना इसके ठीक उलट बात कहते हैं। और वे भी ठीक कहते हैं-

शिशु लोरी के शब्द नहीं
संगीत समझता है
बाद में सीखेगा भाषा
अभी वह अर्थ समझता है

समझता है सबकी मुस्कान
सभी की अल्ले ले ले ले
तुम्हारे वेद पुराण कुरान
अभी वह व्यर्थ समझता है
अभी वह अर्थ समझता है[2]

हमारे यहां शिशु लोरियों के रूप में बड़ी कोमल और सौंदर्य से सराबोर कविताएं सुनते हुए शैशव से बचपन की यात्रा करता है। उसके घुटनों चलने के दिन एक समय के भारत में कैसे हुआ करते थे, सूरदास की इन पंक्तियों से समझ सकते हैं- 'घुटरुन चलत रेनु तनु मंडित मुख दधि लेप किए।' घुटनों-घुटनों भाग रहा है, मिट्टी में खेल रहा है, मुख पर दही लगा हुआ है। और कुछ दिन बाद जब पां-पां पैयां चलने लगा है तो उसे

देखकर घर की स्त्रियां कितना खुश हैं, इसका अंदाजा राजस्थान के जगरौटी अंचल के इस गीत से मिलता है-

चिड़िया चटाचट बोलै, बधायौ मेरे अंगना में डोलै
सास घर डोलै, ससुर घर डोलै
हमसे ना मुख से बोलै, बधायौ मेरे अंगना में डोलै
देवर घर डोलै, देवरानी घर डोलै,
हमसे ना मुख से बोलै, बधायौ मेरे अँगना में डोलै[3]

उधर पेड़ों में चिड़ियाएं चट-चट बोल रही है, इधर अभी-अभी पैरों पर चलने लगा बच्चा चट-चट डोल रहा है। उसके पैरों से कहां चट-चट की आवाज होने वाली है लेकिन यह मां, दादी या बुआ है जो कुछ बढ़ा-चढ़ाकर बता रही है। जानती है कि एक दिन इन पैरों की धमक भी धरती पर सुनाई देगी।

जब बच्चा एक-दो साल का हो जाता तो उसे पैरों पर औंधा लेटाकर झूला झुलाते। पैरों की पगथलियों पर पेट के बल लेटाकर ऊंचा उठाते। इससे बच्चे में गिरने की आशंका से उपजा भय पैदा होता। दूसरी ओर अधर रहते हुए, न नीचे, न ऊपर होने का रोमांच होता। उसे इस तरह से खिलाने के दौराने कितने ही गीतों और कितनी ही कविताओं का सृजन हुआ है-

चकचक मंडड्यौ घी की दाळ
दीयौ बळै समदर की पाळ
आ रे काळा कागला
हांडी फोड़ कड़ीली चाट

घी से तरबतर रोटी है, घी से छौंकी हुई दाल है। समंदर के किनारे दीपक जल रहा है। काले कौए आ, बचा कुछा खा। जिस हांडी में दाल पकी उसे फोड़-फोड़कर खा। जिस कड़ीली (मिट्टी का पक्का बर्तन) में रोटी सेकी गई उसे चाट-चाट कर खा। वैसे भी अभी कविता में क्या कहा गया है यह बताना न तो कविता गाने वाले बड़े का उद्देश्य है न सुनने वाले बच्चे का। फिलहाल तो ध्वनियों का आनंद लिया जा रहा है। यही वजह है कि इस उम्र के लिए अधिकांश निरर्थक कविताएं भी हुआ करती थीं। निरर्थकता का ही आनंद हुआ करता था-

ऊर-कूर सौड़ैली भड़बट्टौ
सूंतड़ी सटकारा अण्डा बारा बेर
घोटन्यौ टोटन्यौ पच्चीस बेर

अब बच्चा कुछ और बड़ा हो गया है। मां-बाप से चिपके रहना छूट गया है। बाहर बच्चों के साथ खेलना अधिक प्रिय लगने लगा है। आंधियों में खेलते हुए बच्चों के साथ कविता गा रहा है। ये कविता उससे कुछ और बड़े बच्चों ने बनाई होगी, आगे चलकर वह भी ऐसी तुकबंदियां करने वाला है-

आंधी आई, म्हेव आयौ गगन घटा
भूरी बिलाई क हुया मिनकट्या घूघरी बंटा।
आंधी आ रही है, गगन में घटाएं घिर रही हैं, बूंदें गिर रही हैं। ऐसे समय में भूरी बिल्ली ने बच्चे दिए हैं। इस खुशी के अवसर पर क्यों न घूघरी (उबले हुए गेहूं) बंटवायी जाए।

गांव में छह सात साल की उम्र में ही बच्चे घर के काम काज में हाथ बंटाना शुरू कर देते थे। दूसरे शब्दों में उनसे हाथ बंटवाना शुरू कर दिया जाता था। बच्चे अपने से छोटे भाई-बहनों की सार संभाल में मदद करते। छोटे बर्तन में पानी भर कर लाने में मदद करते। छोटी तगारी में गाय-भैंस का गोबर उठाने में मदद करते थे। खलिहानों में छोटी टोकरियों में अनाज ढोने में मदद करते। पशु चराने के लिए जंगल में जाना शुरू कर देते। इन सब कामों में खेल का आनंद भी समाया रहता और कामों को सीखना भी चलता। रात के समय सोने से पहले चूल्हे के कोने या आंगन में बैठकर कहानियां सुनते। दादी, नानी, बुआ, काकी में से कोई ये कहानी सुनाती। कुछ कहानियों को बच्चे बड़ा जिद

कर-करके और फिर-फिर सुनते। इनमें चिड़िया और चुहिया, माली की बाड़ी में खाना ढूंढ़ने जाने वाली कमेड़ी, सियार और ऊंट, सियार और मोर इत्यादि कहानियां हुआ करती थीं।

कुछ और बड़े हो गए नौ-दस साल के तो अब से ज्यादातर समय बाहर ही खेलते। बाहर जो खेल खेलते उनमें संवादात्मक तुकबंदियां हुआ करती थीं-

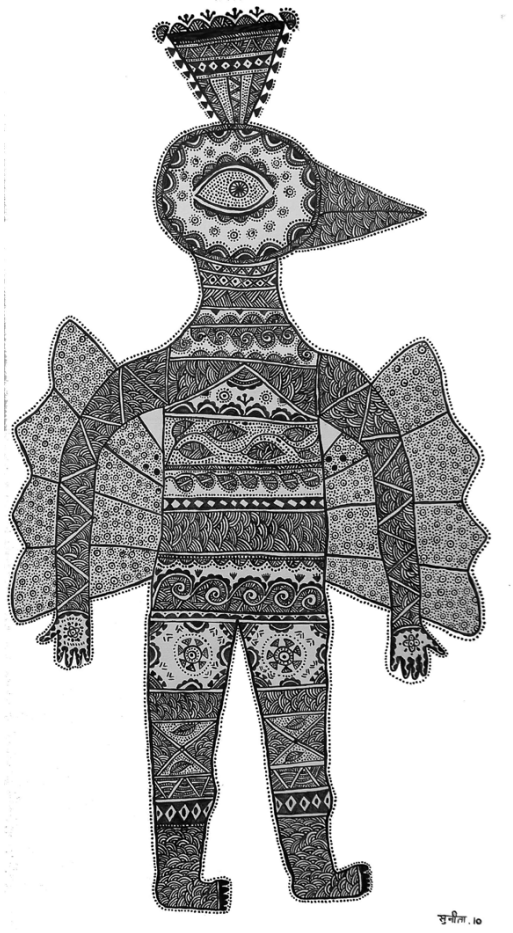

कह रे कुम्हार के
बोल रे सुनार के
तेरी नगरी में किसकी सगाई
और किसकी शादी

मेरी नगरी में
शमा की सगाई
और कबीर की शादी
मिठाई क्या-क्या बनी
लड्डू जलेबी बर्फी

चलो खाते हैं-
अहा लड्डू
अहा जलेबी
अहा बर्फी

संसार में शायद ही कोई बच्चा हो जिसे खेलकर घर लौटने में देरी न हुई हो। जिससे लौटने में देरी की वजह न पूछी गई हो और उसे जवाब न देना पड़ा हो-

भैय्या रे भैय्या कहां रहेन
बेले बबुर तरे खेलत रहेन
बड़की गढहिया में खेलत रहेन
सगरवा से मछरी बटोरत रहेन
लाली बजरिया मा बेचत रहेन
अपन अम्मां का ढूंढ़त रहेन[4]

बताईए अब तक कहां रहे? कुछ देर बबूलों के नीचे, कुछ देर पोखर में खेला। उसके बाद मछलियां पकड़ी। बाजार में मछली बेचने गया और उसके बाद देर तक अम्मां को ही ढूंढ़ता रहा।

हमारे गांव में एक प्रौढ़ जिनका नाम रामसहाय था, वे रातों में अपने कच्चे घर की पौड़ी में चिमनी के हल्के उजास में लोक कथाएं सुनाया करते थे। बड़े, बुजुर्गों के साथ हम बच्चे भी उनकी कहानियां सुनकर देर रात रोमांच से भरे अपने घर लौटा करते थे।

गांव में विवाह और मृत्यु भोज के अवसरों पर आदमी औरतों के समूह गीत गाया करते थे। वृद्धों की मृत्यु का बड़े उत्साह से समारोह मनाया जाता था। किसी की दादी सास मर गई, बुढापे के कष्टों से निजात मिली। यह इतने हर्ष की बात होती थी कि कहा जाता था-

सासू मरगी तौ मरबा दै, डीडी डम पुआ करैंगा रैं।

सास नहीं रही, अच्छा हुआ। मुक्त हुई। इस खुशी के मौके पर पुए बनाए जाएंगे। इस तरह मृत्युओं पर शोक के बजाय उत्सव मनाया जाता था। रात-रात भर आदमी, औरतों के झुण्ड गीत गाते।

विवाहों में दो-दो, तीन-तीन दिन के लिए बारात सजती और दुल्हन के गांव में ठहरती थीं। खूब फुर्सत हुआ करती थी, खूब गीत-नाच होते थे। आदमी, औरतों के समूह आमने-सामने होकर गीत गाते थे। नाचते थे। उनमें बहुत सारे गीत यौन संकतों, इशारों, आमंत्रण आदि विषयों पर भी होते थे। और हम बच्चों को भी वे काफी कुछ समझ में आते थे। बल्कि कभी-कभी तो पूरे के पूरे ही समझ में आ जाते थे। हम बच्चे उन गीतों को सुनते थे, कभी-कभी साथ में गाते भी थे। कोई रोकता टोकता नहीं था। एक बार जरूर एक गीत के लिए टोका गया वह भी इसलिए के मैं उसे बेमौके गांव में गाता फिर रहा था। तो बड़े भाया (पिता के बड़े भाई) ने कहा-'अरे! अरे! इस गीत को मत गाओ।' जब मैं वयस्क हुआ और उस गीत की याद आई तो समझ आया कि कितना ऐंद्रिक, कितना मांसल, कितना 'डायरेक्ट' वह गीत था। और कितना अच्छा भी। लेकिन तब मुझे उसके बोल उसकी धुन अच्छी लगती थी इसलिए गाता था। बीते दिनों एक लोकगीत का मर्म समझने के लिए सुनीता[5] ने उसकी नानी को फोन लगाया। सुनाती ने नानी से ही वह गीत सुना था। नानी ने जवाब दिया- 'हमने तो कभी अर्थ नहीं निकाला। हम तो गाते ही थे तो यह मालूम नहीं कि इसका मतलब क्या है?' लोकगीतों के मर्म हैं कि उन्हें गाने वाले वयस्क, प्रौढ़ और बुजुर्ग भी कभी-कभी उनकी अर्थ-ध्वनियों का उतना आनंद नहीं उठा पाते। वे बस शब्दों और संगीत के सतही मनोरंजन के लिए ही उन्हें हजारों बार गाते हैं। कोई-कोई ही, सौ में से एक ही उनका मर्मज्ञ हो पाता है।

विख्यात लोक गायक धवले जब चौथी कक्षा में पढ़ते थे। पद गाने लगे थे। अपने गांव की जोठ में गाते थे। दंगलों में होने वाले लोकगीतों में, जिनके अधिकांश गायक वयस्क होते हैं और जिनमें लोकगाथाएं, उपनिषदों की कहानियां गाई जाती हैं। बारह-तेरह साल के बच्चे उनकी कच्ची मीठी आवाज के लिए जानबूझकर शामिल किए जाते हैं। हमारे इलाके में लोकगीतों की एक शैली है 'कन्हैया' जिसमें वही रामायण, महाभारत की कहानियां गाई जाती हैं। इसके गायन दल में सौ-सवा सौ लोग शामिल होते हैं। इस दल में चौदह से लेकर चौरासी वर्ष की उम्र के लोग शामिल होते हैं। गांव में से जो भी शामिल होना चाहे हो सकता है। शर्त यही है कि रातों में जागकर गायक दल के साथ नौबत और घेरे की धुन पर अभ्यास करना होगा। मुझे याद है, मैं जब पांचवी में पढ़ता था। दस साल का था। मेरे मामाओं के गांव में जोठ के अभ्यास में शामिल हुआ करता था। उन गीतों की झड़ियों की छाप आज भी स्मृति पर अमिट है।

परभत बगत है गईअ, सखी ओ सब जमना पै न्हा रहीअ
ओ बानै ओढ़े तौ परेला कारे पीरे, वामैं नग जरे जौ जरेवा मोती हीरे
जगमग जगमग होवै घटा कारी लूमै
जमना के तट पै का ढब ते सखी ओ सब घूमै

मुंह-अंधेरे का समय है। काली पीली ओढ़नियां ओढ़े, युवतियां यमुना के किनारे टहल रही हैं। आसमान में काली बदलियों में बिजलियां कौंध रही हैं। अंधकार में युवतियों के गहने चमक रहे हैं।

राजा मोरध्वज की एक कहानी थी। वह बचपन में तरह-तरह से सुनने को मिली। उस पर आधारित एक नाटक खेला गया था। लोक गीतों में वह कहानी गायी जाती थी-

कैसे खैंचू आरे कू फवारों बैरी छूटैगौ
तोसूं नाटूं तौ बलम सत टूटैगौ। (लोक कवि धवले)

राजा मोर ध्वज और उनकी रानी अपने बच्चे को चीर रहे हैं। क्योंकि साधुओं ने भोजन में उनके पुत्र का मांस मांगा है। मर्यादा यह है कि किसी भी सूरत में द्वार से अतिथि भूखा-प्यासा नहीं जाना चाहिए।

मां के मन का व्यथित द्वंद्व इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुआ हैं। मैं अपने बच्चे पर इस आरे की धार को कैसे रखूं, खून की धार बहेगी। ऐसा करने से इंकार करती हूं तो सत्य की हानि होती है।

मेरे मामाओं के गांव में कन्हैया की जोठ इस लोमहर्षक दृश्य को ऐसे गाती थी-

चल रह्यौ रतन कंवर पै आरौ
सगाक-सगाक छूटै फव्वारो, बैरी नांईं तो डटै
धरनी ओ अम्बर, सरग फटै

बच्चे को आरे से काटा जा रहा है। खून का फव्वारा छूट रहा है। इस दृश्य को देखकर धरती, आकाश और स्वर्ग के हृदय फट गए हैं।

बचपन में भी और आज भी कभी इस दृश्य में मुझे हिंसा का अनुभव नहीं हुआ। कहानी जिस तरह से चलती थी, मन राजा, रानी और बच्चे के प्रति करुणा से भर उठता था। दंगल में सौ-सवा सौ लोगों के कोरस में गाए जाने वाले इन बोलों को सुनकर श्रोताओं की आंखों में आंसू आ जाते थे। कई बार बच्चों की कहानियों में खून के छींटे और दाग धब्बे देखकर आधुनिक कथित शिक्षाविद् त्राही-त्राही करने लगते हैं। जबकि बच्चों के चारों ओर खूनी खेल चल ही रहा होता है। अखबार खून से धुले ही होते हैं। फिल्मों में मारधाड़, मारकाट देखते ही हैं। वीडियो में गेम खेलते हुए वे कितने ही आम इंसानों को आधुनिक हथियारों से रौंदते-कुचलते ही हैं। देखने वाली बात यह है कि हिंस्र प्रतीत होता दृश्य कहानी में किस तरह से आया है और कहानी का समग्र प्रभाव क्या पड़ रहा है।

स्त्रियों के गीत अलग तरह के होते थे। उनके भी रसियाओं के दंगल भरते थे। उनके समूह भी अपने सुरीले बोलों से आकाश को गूंजाते ही रहते थे। उपनिषदों और लोक आख्यानों के अलावा वे आधुनिक समय के गीत भी कभी-कभी गा दिया करती थीं। एक दंगल में एक स्त्री को गाते सुना-

भारत की नैया डगमग हो रही, अंगरेजन की आंधी में
म्हारो देस कर्यौ आजाद महातमा गांधी नै।

भारत देश की नाव जब अंगरेजी राज के भंवर में फंसकर डगमग हो रही थी, तब महात्मा गांधी ने कमान संभाली और आजादी का संघर्ष तेज किया।

शोक के अवसरों पर स्त्रियां करुण स्वर में शोक गीत गाती थीं-

गंगाजी के घाट पै सायब साधु होगो हो राम
लिख-लिख चिठिया दे रही बीरा बेगौ सौ आज्यौ हो राम
बेई पगन बीरा आ गयौ भैना क्या दुख पायौ हो राम
दुख तौ रे बीरा भौत सौ सायब साधु होगौ हो राम
होगौ तो भैना हो जाबादै अपनौ का धन लेगौ हो राम

इस शोक गीत में एक युवती के पति के घरबार छोड़कर सन्यासी हो जाने की कहानी है। कैसे घर चलाएगी। अकेली कैसे खेती बाड़ी संभालेगी, खेत में हल, बैल लेकर कौन जाएगा। कितनी आशंकाएं हैं। वह अपने भाई को संदेश भेजती है। भाई सुनते ही बहन के गांव की ओर पैदल चल देता है। आकर बहन के समाचार लेता है। धीरज बंधाता है- पति साधु हो गया तो हो जाने दो। अपने हिस्से का जीवन तो ले ही नहीं गया।

गीत में बड़ों के जीवन की समस्या है, लेकिन बच्चे भी इन्हें सुनते थे। इस तरह के सैंकड़ों गीत सुनते थे। लोक में व्याप्त स्थानीय गीत, संगीत और कथा-गाथाओं के समृद्ध माहौल में पल, बढ़ रहे बच्चों में से अनेक आगे चलकर गायन दलों के अच्छे गायक हो जाते थे। मेडिया यानी मुख्य गायक हो जाते थे। और उनमें से अनेक नई रचनाएं करने लगते थे। लोक साहित्य को ही जीवन समर्पित कर देते थे। माड़, जगरौटी अंचल के लोक कवि गायक धवले मौखिक परंपरा के ऐसे ही एक साहित्यकार हैं जिन्होंने चौथी कक्षा से ही गायक दलों के साथ गाना शुरू कर दिया था। आगे चलकर उन्होंने अपना गायक दल बनाया। पंडवानी गायिका तीजनबाई की तरह उत्तर भारत के कई राज्यों में प्रस्तुतियां दी। उन्होंने सौ से अधिक पदों की रचना की। पद, कथा और काव्य की मिश्रित विधा है। इस विधा में उन्होंने अनूठे काव्य

की रचना की। उनके संगीतबद्ध पद इलाके में उत्साह से सुने जाते हैं। दंगलों में हजारों की तादाद में लोग उनसे कहानियां सुनने के लिए जुटते हैं।

समय-समय पर गांव में नाटक भी खेले जाते थे। गांव में जमीन की धूल में भरथरी (भर्तृहरि) पिंगला का नाटक खेला जा रहा था। पिंगला का अभिनय कर रहा लड़का हमारे साथ स्कूल में पढ़ता था। हमसे चार साल आगे था। गजब का डांसर था। नाटक के बीच में जो ब्रेक आते थे उनमें पिंगला नाचता था। ब्रेक के बाद फिर रानी की भूमिका में आ जाता था। भरथरी पिंगला की कैसी जटिल कहानी जिसमें भरथरी के प्रेम और वैराग्य की जटिल विषय वस्तु। उसे हम बच्चे बड़े चाव से देखते थे। जब से नाटक देखा तब से आज तक नाटक के गीतात्मक संवादों को दोहराया करते हैं-

झूठी गवाही देणे से तू मर ज्यागी बांदी
तनखा ज्यागी छूट फेर के खावैगी बांदी।
छोटे भाई को राज दे दिया आज भरथरी राजा
बन में जाके करै रे तपस्या बजे सत्य का बाजा।

लोक साहित्य पर काम के सिलसिले में उत्तर भारत के विभिन्न अंचलों मुजफ्फरपुर (बिहार), मंडला-डिंडोरी (मध्यप्रदेश), चांपा-जांजगीर (छत्तीसगढ़), गुमला (झारखण्ड), ललितपुर, चित्रकूट, अयोध्या, बहराइच (उत्तर प्रदेश), बागड़, मारवाड़, माळ, जगरौटी (राजस्थान) आदि में घूमते, भटकते विभिन्न आंचलिक भाषाओं में बचपन के लिए साहित्य की उपलब्धता की पहचान करते हुए मैंने यह पाया कि हर अंचल, हर भाषा में बच्चों के लिए लोरियां, शिशु गीत, बालगीत, लोककथाओं की कोई कमी नहीं है। यह सच्चाई है कि बड़ों के साहित्य (लोकगीत, लोककथा, लोकगाथाओं) की तुलना में कम हैं लेकिन पर्याप्त हैं। नमूने के तौर पर बैगा, बज्जिका, छत्तीसगढ़ी, कुड़ुक, अवधी, बघेली, धावड़ी, भीली, इत्यादि भाषाओं में विभिन्न संस्थाओं के लिए बनाई गई किताबें देखी जा सकती हैं।

विजयदान देथा ने अकेले बोरूंदा गांव से इतनी सारी लोककथाएं संग्रहित कर लीं कि बारह खण्डों में ''बातां री फुलवारी'' नामक वृहत संकलन निकाला। उन लोककथाओं में से चुनकर बच्चों के लिए 'अनोखा पेड़'[6] जैसा लोक कथाओं का अनूठा संकलन प्रकाशित किया। एकलव्य, भोपाल ने बच्चों के लिए बुंदेलखण्डी, माळ आदि भाषाओं में लोककथाओं की पिक्चर बुक प्रकाशित की हैं।

लोक संस्कृति और साहित्य के ऐसे समृद्ध माहौल में पलते-बढ़ते बच्चे भी भाषा में रस लेना सीख जाते हैं। उनमें मौखिक साहित्य की उत्कृष्ट रचनाओं को सराहने की क्षमता आ जाती है। समीक्षा करने की क्षमता आ जाती है। वे बता सकते हैं किस गीत या कहानी में क्या अच्छा है और क्या अच्छा नहीं है। कुछ की कहन अच्छी हो जाती। कुछ की गीत कविता जोड़ने की क्षमता अच्छी हो जाती। कुछ अपने समय के रंग लोककथाओं में घुला-मिला देते। कुछ मौखिक साहित्य की परंपरा में इतना डूब जाते कि घर वालों को लगता गृहस्थी को डुबो देगा। उन्हें रोकने की कोशिश की जाती। लेकिन कला का आकर्षण सदा ही ऐसी रोकटोक पर भारी पड़ता रहा है। जो रम गए उन्हें कौन रोक सकता है भला। यह भी गौर करने वाली बात है कि मौखिक साहित्य में सब कुछ अच्छा-अच्छा ही नहीं होता। काफी कुछ फूहड़, सतही कूड़े का ढेर भी होता है। जैसा कि आधुनिक साहित्य की लिखित परंपरा में उससे भी ज्यादा मिलता है और आजकल इंटरनेट पर तो कूड़े-कर्कट की भरमार ही है।

मौखिक साहित्य की परंपरा बचपन को समृद्ध करती थी इसमें कोई संदेह नहीं। मगर अब समय बदल गया है। वह परिवेश निरंतर सिमटता जा रहा है जिसमें मौखिक साहित्य फलता-फूलता है। बाल साहित्य के पुरोधा शंकर के 'ननिहाल में गुजरे दिन' अब हकीकत नहीं रहे गए हैं। अब हम उन्हें किताब के जरिए ही जान सकते हैं। एक खुशहाल बचपन के लिए जिन संयुक्त परिवारों में उत्साह का माहौल रहता था, वे संयुक्त परिवार इस समय में टूटकर बिखर रहे हैं। वह ढांचा कृषि समाज के औधौगिक समाज में रूपांतरित होने की प्रक्रिया में अनवरत ध्वस्त हो रहा है। अंतिम सांसें ले रहा है। परिवार, समाज अब भी है लेकिन उनमें वह सामूहिकता बोध और उससे मिलने वाला सुरक्षा का

अहसास गायब हो गया है। सामाजिक तानेबाने में हुई इस क्षति का असर बड़ों पर तो पड़ा ही बचपन पर और भी गहरा पड़ा। इस प्रक्रिया में बचपन को काफी क्षति पहुंची। बचपन से काफी कुछ छिन गया। ऐतिहासिक बदलावों की प्रक्रिया में जो होना था वह तो हुआ। उसे रोकना संभव भी न था। पुराना टूटा, नया बना। पुराना टूटने के साथ पुराने की जो बुराईयां थीं वे टूटकर नष्ट हो गईं लेकिन पुराने ढांचे की जो अच्छाईयां थीं वे भी नष्ट हो गईं। अकेलापन और अजनबीपन नई बनी सामाजिक संरचना की देन है। और यह बढ़ता जा रहा है। इसका मतलब यह है कि खोए हुए सामूहिकता बोध से मिलने वाली सुरक्षा का कोई विकल्प फिलहाल नई सभ्यता नहीं खोज पायी है।

हमारे देश में बच्चों के लिए यह पारंपरिक साहित्य की धारा के क्षीण होने और आधुनिक साहित्य की क्षीण सी धारा के निर्मित होने का दौर है। मौखिक परंपरा में बच्चों के मतलब का साहित्य खूब रहा है। बच्चों को सम्बोधित साहित्य भी खूब रहा है। लेकिन ऐसा कोई स्पष्ट विभाजन कभी नहीं रहा है कि यह सिर्फ बच्चों के लिए है और यह सिर्फ बड़ों के लिए है। बड़े बच्चों को सम्बोधित साहित्य का रस लेने में शामिल रहे और बच्चे बड़ों के साहित्य का रस लेने में शामिल रहे।

नए समय और सामाजिक जीवन में बच्चों के लिए विकसित हो रहा साहित्य अभी उस तरह नहीं गुंथ सका या गूंथा जा सका है जैसे पुराने ढांचे में मौखिक साहित्य उस समाज का अभिन्न हिस्सा था। ◆

नोट : इस लेख में संदर्भ में उद्धृत कविताओं के अलावा शेष सभी उद्धृत कविता और गीत पंक्तियां राजस्थान के माळ अंचल (करौली में बामनवास, नादौती का क्षेत्र) से हैं।

संदर्भ :

1. बिहार के मुजफ्फरपुर के आसपास के इलाके में प्रचलित लोरी।
2. हिन्दी कवि नरेश सक्सेना की कविता
3. राजस्थान के जगरौटी अंचल (करौली में हिण्डौन के आसपास का क्षेत्र) में प्रचलित लोकगीत।
4. यह अवधी लोकगीत बहराइच के आसपास के क्षेत्र से संकलित किया है।
5. सुनीता राजस्थानी लोक शैली मांडना की ख्यातिप्राप्त चित्रकार हैं, इस शैली में बच्चों की कई किताबें उनके चित्रों से सजी आ चुकी हैं और लेखक की पत्नी हैं। शिक्षा विमर्श के राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों पर प्रकाशित विशेषांक के कवर पर और इस लेख के साथ सुनीता के चित्र देखे जा सकते हैं।
6. अनोखा पेड़, रूपायन संस्थान बोरूंदा, जोधुपर से प्रकाशित है।

लेखक परिचय : राजस्थान के जाने-माने युवा कवि हैं। एकलव्य, भोपाल; रूम टू रीड, इण्डिया एवं अन्य प्रकाशनों से बच्चों के लिए कविता एवं कहानियों की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे हैं।

संपर्क : 9460113007; prabhaaat@gmail.com